National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2024; 1(54): 199-204
© 2024 NJHSR
www.sanskritarticle.com

Gurunath Bhat
Research Scholar,
PG Department of Studies in Sanskrit,
Karnatak University, Dharwad

Dr. Padmavati M Singari
Assistant Professor, and Co - Ordinator, PG Department of – Studies in Sanskrit,
Karnataka University, Dharwad

Correspondence:
Gurunath Bhat
Research Scholar,
PG Department of Studies in Sanskrit,
Karnatak University, Dharwad

द्वैत से अद्वैत तक - २१वीं सदी में नैतिक सापेक्षवाद के प्रतिकार के रूप में शंकराचार्य की दृष्टि

Gurunath Bhat, Dr. Padmavati M Singari

अमूर्त –

यह शोध पत्र २१वीं सदी के एक प्रमुख बौद्धिक और सामाजिक संकट, नैतिक सापेक्षवाद, की गहन विवेचना करता है और इसके दार्शनिक प्रतिकार के रूप में आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत दर्शन को प्रस्तुत करता है। नैतिक सापेक्षवाद, जो यह मानता है कि नैतिक सत्य सार्वभौमिक या वस्तुनिष्ठ नहीं होते, बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक या व्यक्तिगत दृष्टिकोणों पर निर्भर करते हैं, ने एक ऐसे नैतिक शून्य को जन्म दिया है जहाँ सार्वभौमिक मूल्यों की स्थापना और मानवाधिकारों की रक्षा चुनौतीपूर्ण हो गई है। यह पत्र तर्क देता है कि इस समस्या का मूल कारण एक खंडित और द्वैतवादी विश्वदृष्टि है, जो 'स्व' और 'अन्य' के बीच एक मौलिक भेद मानती है। इसके समाधान के रूप में, शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन एक गहन तत्वमीमांसीय आधार प्रदान करता है, जिसका मूल सिद्धांत अस्तित्व की परम एकता या अद्वैत है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' के सूत्र पर आधारित यह दर्शन बताता है कि परम सत्य एक, अखंड, सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म है, और व्यक्तिगत आत्मा (आत्मन्) उसी ब्रह्म से अभिन्न है। यह शोध पत्र दर्शाता है कि कैसे अद्वैत की तत्वमीमांसा से एक सार्वभौमिक नैतिकता का उदय होता है, जहाँ 'अन्य' के प्रति करुणा और प्रेम स्वयं के प्रति प्रेम का ही विस्तार बन जाता है। पारमार्थिक और व्यावहारिक सत्य के द्वैत-स्तरीय सिद्धांत के माध्यम से, अद्वैत दर्शन परम एकता के आदर्श को बनाए रखते हुए सांसारिक कर्तव्यों और नैतिक भिन्नताओं को भी समायोजित करता है। अंततः, यह पत्र यह निष्कर्ष निकालता है कि शंकराचार्य की दृष्टि केवल एक प्राचीन दार्शनिक प्रणाली नहीं है, बल्कि आधुनिक दुनिया के नैतिक विखंडन के लिए एक शक्तिशाली, सुसंगत और एकीकृत समाधान प्रदान करती है, जो हमें द्वैत की भ्रामक धारणाओं से निकालकर एकता की सार्वभौमिक चेतना की ओर ले जाती है।

कुंजी शब्द -अद्वैत वेदांत, नैतिक सापेक्षवाद, ब्रह्म, आत्मन्, माया, पारमार्थिक सत्य, एकत्व |

आमुख - आधुनिक नैतिकता का संकट और एक प्राचीन समाधान की प्रासंगिकता

२१वीं सदी, तकनीकी प्रगति और वैश्विक अंतर्संबंध का युग होने के बावजूद, एक गहरे नैतिक और दार्शनिक संकट से जूझ रही है। इस संकट के केंद्र में नैतिक सापेक्षवाद की अवधारणा है, जो आधुनिक बौद्धिक विमर्श पर हावी हो गई है। नैतिक सापेक्षवाद एक दार्शनिक स्थिति है जिसके अनुसार नैतिक या नीतिशास्त्रीय प्रस्ताव वस्तुनिष्ठ और/या सार्वभौमिक नैतिक सत्यों को प्रतिबिंबित नहीं करते हैं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक या व्यक्तिगत परिस्थितियों के सापेक्ष दावे करते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, 'सही' और 'गलत' की कोई सार्वभौमिक कसौटी नहीं है; जो एक संस्कृति के लिए नैतिक है, वह दूसरी के लिए अनैतिक हो सकता है, और किसी भी दृष्टिकोण को दूसरों पर वरीयता नहीं दी जा सकती।

यद्यपि यह सिद्धांत सहिष्णुता और बहुसंस्कृतिवाद को बढ़ावा देने के उद्देश्य से उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है, इसके परिणाम गंभीर और दूरगामी हुए हैं। नैतिक सापेक्षवाद ने "नैतिक विमर्श के विखंडन" को जन्म दिया है, जहाँ विभिन्न समूहों के बीच सार्थक संवाद असंभव हो जाता है क्योंकि उनके पास कोई साझा नैतिक आधार नहीं होता। इसके परिणामस्वरूप, हम नरसंहार, उत्पीड़न, या मानवाधिकारों के घोर उल्लंघन जैसी कार्रवाइयों की सार्वभौमिक निंदा करने में असमर्थ हो जाते हैं, क्योंकि किसी भी नैतिक दावे को केवल एक 'सांस्कृतिक दृष्टिकोण' कहकर खारिज किया जा सकता है। यह स्थिति एक नैतिक पक्षाघात को जन्म देती है, जो सामाजिक न्याय और वैश्विक सहयोग के प्रयासों को कमजोर करती है।

यह शोध पत्र तर्क देता है कि नैतिक सापेक्षवाद का संकट केवल एक दार्शनिक समस्या नहीं है, बल्कि यह एक गहरा सत्तामूलक (ontological) संकट है। यह संकट वास्तविकता की एक खंडित, द्वैतवादी समझ से उत्पन्न होता है जो व्यक्तियों, समाजों और संस्कृतियों को मौलिक रूप से पृथक और असंबद्ध इकाइयों के रूप में देखता है। यदि हम सभी मौलिक रूप से अलग हैं, तो हमारे सत्य भी अलग-अलग और असंगत होने के लिए अभिशप्त हैं। इस गहन समस्या के समाधान के लिए, हमें एक ऐसे दर्शन की आवश्यकता है जो इस मौलिक पृथकता की धारणा को ही चुनौती दे।

इसी संदर्भ में, आदि शंकराचार्य का अद्वैत वेदांत दर्शन एक शक्तिशाली और प्रासंगिक प्रतिकार के रूप में उभरता है। यह पत्र अद्वैत वेदांत को केवल एक धार्मिक हठधर्मिता के रूप में नहीं, बल्कि एक परिष्कृत तत्वमीमांसीय प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करता है जिसका मूल सिद्धांत—अस्तित्व की परम अद्वैतता—इस विखंडन को सीधे चुनौती देता है। इस शोध का केंद्रीय शोध-प्रबंध यह है कि शंकराचार्य की दृष्टि, जो वास्तविकता की मौलिक एकता पर आधारित है, २१वीं सदी में नैतिक सापेक्षवाद द्वारा उत्पन्न शून्य को भरने के लिए एक सुसंगत, तर्कसंगत और सार्वभौमिक नैतिक आधार प्रदान करती है। यह पत्र अद्वैत के मूल सिद्धांतों की व्याख्या करेगा, इसकी नैतिक मीमांसा को व्युत्पन्न करेगा, नैतिक सापेक्षवाद के साथ इसकी सीधी तुलना करेगा, और अंत में समकालीन नैतिक दुविधाओं पर इसके अनुप्रयोगों का प्रदर्शन करेगा ताकि इसकी स्थायी प्रासंगिकता को स्थापित किया जा सके।

शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत की दार्शनिक आधारशिला

शंकराचार्य के दर्शन को नैतिक सापेक्षवाद के प्रतिकार के रूप में समझने के लिए, पहले इसकी तत्वमीमांसीय नींव को समझना अनिवार्य है। अद्वैत वेदांत का नैतिक ढाँचा इसकी सत्तामूलक समझ से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है। इसके मूल में कुछ प्रमुख अवधारणाएँ हैं जो वास्तविकता, स्व और संसार की प्रकृति को परिभाषित करती हैं।

ब्रह्म (Brahman)- परम सत्य

अद्वैत वेदांत का केंद्र बिंदु 'ब्रह्म' की अवधारणा है। ब्रह्म ही एकमात्र, परम, अद्वैत और अपरिवर्तनीय सत्य है। शंकराचार्य अपने प्रसिद्ध सूत्र में इसे संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं- 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' (ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, जगत मिथ्या है, और जीव ब्रह्म ही है, उससे भिन्न नहीं)। ब्रह्म कोई व्यक्तिगत ईश्वर नहीं है, बल्कि यह अस्तित्व का आधार, वह शुद्ध चेतना है जो सभी रूपों और नामों में व्याप्त है। इसे सत्-चित्-आनंद (अस्तित्व-चेतना-आनंद) के रूप में वर्णित किया गया है। यह वह परम वास्तविकता है जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है, जिसमें सब कुछ स्थित है, और जिसमें सब कुछ विलीन हो जाता है। यह देश, काल और कारणता से परे है।

आत्मन् (Atman)- यथार्थ 'स्व'

यदि ब्रह्म सार्वभौमिक, ब्रह्मांडीय चेतना है, तो 'आत्मन्' व्यक्तिगत चेतना या 'स्व' है। अद्वैत वेदांत का सबसे क्रांतिकारी शिक्षण उपनिषदों के महावाक्यों में निहित है, जो आत्मन् और ब्रह्म की पूर्ण अभिन्नता की घोषणा करते हैं। 'तत् त्वम् असि' (वह तुम हो) जैसे महावाक्य इस गहन सत्य को प्रकट करते हैं कि व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप, अहंकार और शरीर-मन के आवरणों से परे, उस सार्वभौमिक चेतना (ब्रह्म) से अलग नहीं है। व्यक्ति का यह भ्रम कि वह एक सीमित, पृथक इकाई है, अज्ञान या 'अविद्या' का परिणाम है। मोक्ष या मुक्ति इसी अज्ञान को दूर कर अपने वास्तविक स्वरूप, जो कि ब्रह्म है, को पहचानने में निहित है।

माया - phénoménal यथार्थ का आवरण

यदि ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, तो हमें यह विविध और बहुल जगत क्यों दिखाई देता है? शंकराचार्य इसका उत्तर 'माया' की अवधारणा के माध्यम से देते हैं। माया वह शक्ति है जो एक, अद्वैत ब्रह्म को नाम-रूप के अनेक जगत के रूप में प्रकट करती है। यह phénoménal यथार्थ का सिद्धांत है। यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण है कि शंकराचार्य के अनुसार जगत 'असत्' या अस्तित्वहीन नहीं है, बल्कि 'मिथ्या' है। मिथ्या का अर्थ है कि इसका कोई परम, स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है; इसका अस्तित्व ब्रह्म पर आधारित है, ठीक वैसे ही जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम रस्सी पर आधारित होता है। यह अनुभवजन्य रूप से वास्तविक है लेकिन तत्वमीमांसीय रूप से असत्य है।

सत्य के दो स्तर

अद्वैत वेदांत की व्यावहारिकता और परिष्कार इसके सत्य के दो-स्तरीय सिद्धांत में निहित है। यह सिद्धांत अद्वैत दर्शन पर लगने वाले कई आरोपों का स्वतः ही खंडन कर देता है।

1. **पारमार्थिक सत्य** - यह परम, निरपेक्ष सत्य है, जहाँ केवल अद्वैत ब्रह्म ही वास्तविक है। यह ज्ञानी या मुक्त पुरुष की दृष्टि है, जहाँ

2. कोई भेद, कोई द्वैत नहीं है। इस स्तर पर, जगत और जीव की पृथक सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं है।

3. **व्यावहारिक सत्य** - यह अनुभवजन्य, लेन-देन का सत्य है, जो हमारे दैनिक जीवन का यथार्थ है। इस स्तर पर, जब तक व्यक्ति अज्ञान से ग्रस्त है और स्वयं को एक पृथक इकाई मानता है, तब तक जगत, अन्य व्यक्ति, वस्तुएँ और नैतिक कर्तव्य (धर्म) सभी वास्तविक और वैध हैं।

सत्य का यह द्वैत-स्तरीय विभाजन कोई विरोधाभास नहीं है, बल्कि एक अत्यंत महत्वपूर्ण दार्शनिक उपकरण है। यह इस सामान्य आलोचना का पूर्व-समाधान करता है कि अद्वैतवाद नैतिक शून्यवाद या निष्क्रियता की ओर ले जाता है। यदि सब कुछ एक है, तो नैतिक कर्म क्यों करें? इसका उत्तर व्यावहारिक सत्य के स्तर पर मिलता है। जब तक हम द्वैत का अनुभव करते हैं, तब तक हमें नैतिक और सामाजिक नियमों का पालन करना चाहिए। ये नियम और कर्तव्य परम सत्य के विरोधी नहीं हैं, बल्कि वे चित्त शुद्धि के माध्यम से उस परम सत्य की अनुभूति तक पहुँचने के साधन (साधना) हैं। इस प्रकार, यह ढाँचा अद्वैत को एक साथ पारलौकिक और व्यावहारिक दोनों बनाता है, जो परम आदर्श को सांसारिक यथार्थ से जोड़ता है।

अद्वैत की नैतिक मीमांसा- 'एकत्व' से 'सार्वभौमिकता' तक

अद्वैत वेदांत का नैतिक दर्शन इसकी तत्वमीमांसा से स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होता है। यह कोई बाहरी नियमों का संग्रह नहीं है, बल्कि सत्ता की प्रकृति की गहरी समझ पर आधारित एक आंतरिक दृष्टिकोण है। यदि नैतिकता का प्रश्न यह है कि "मुझे दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए?", तो अद्वैत इसका उत्तर "दूसरा कौन है?" प्रश्न से शुरू करके देता है।

नैतिकता का सत्तामूलक आधार

अद्वैत दर्शन में, नैतिकता सत्तामूलक (ontological) है। इसका आधार महावाक्य 'तत् त्वम् असि' में निहित है। यदि प्रत्येक जीव का यथार्थ स्वरूप (आत्मन्) परम ब्रह्म से अभिन्न है, तो तार्किक रूप से सभी जीवों का यथार्थ स्वरूप भी एक ही है। 'अन्य' की धारणा, जो सभी स्वार्थ, संघर्ष, घृणा और अनैतिक व्यवहार का मूल कारण है, तत्वमीमांसीय दृष्टि से एक भ्रम है। जब हम किसी दूसरे को हानि पहुँचाते हैं, तो हम अनजाने में अपने ही सार्वभौमिक स्वरूप को हानि पहुँचा रहे होते हैं। यह समझ नैतिकता को एक नए धरातल पर स्थापित करती है।

सार्वभौमिक करुणा एक तार्किक परिणाम के रूप में

इस सत्तामूलक एकता की अनुभूति का सीधा और तार्किक परिणाम सार्वभौमिक प्रेम और करुणा है। अद्वैत की अनुभूति स्वाभाविक रूप से सार्वभौमिक प्रेम और करुणा की ओर ले जाती है, क्योंकि 'अन्य' को स्वयं से भिन्न नहीं माना जाता है। यह कोई भावुक या भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं है, बल्कि एक तत्वमीमांसीय सत्य की बौद्धिक और अनुभवात्मक स्वीकृति है। अहिंसा (किसी को हानि न पहुँचाना), करुणा (दूसरों के दुःख को महसूस करना), और मैत्री (सभी के प्रति मित्रता का भाव) जैसे गुण इस अनुभूत एकता की सहज अभिव्यक्ति बन जाते हैं। वे बाहरी आदेश नहीं हैं, बल्कि आंतरिक बोध के फल हैं।

व्यावहारिक जगत में धर्म की भूमिका

यहाँ सत्य के दो स्तरों का सिद्धांत फिर से महत्वपूर्ण हो जाता है। जबकि परम लक्ष्य ज्ञान (jñā na) के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करना है, उस ज्ञान के लिए मन का शुद्ध होना आवश्यक है। मन की शुद्धि निष्काम कर्म (बिना फल की आसक्ति के कर्म करना) और व्यावहारिक जगत में धर्म के पालन के माध्यम से होती है। यहाँ धर्म केवल सांस्कृतिक नियमों का एक समूह नहीं है, बल्कि वे आचरण के सिद्धांत हैं जो व्यक्ति के कर्मों को ब्रह्मांडीय व्यवस्था के साथ संरेखित करते हैं। स्वार्थपूर्ण कर्म मन में विक्षेप और अशुद्धियाँ उत्पन्न करते हैं, जबकि निष्काम और धर्मानुसार कर्म मन को शांत, एकाग्र और शुद्ध करते हैं, जिससे वह अद्वैत सत्य को ग्रहण करने में सक्षम होता है। इस प्रकार, व्यावहारिक स्तर पर नैतिकता, पारमार्थिक सत्य की प्राप्ति के लिए एक अनिवार्य सोपान है।

यह दृष्टिकोण नैतिकता को एक "अंदर से बाहर" (inside-out) प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है। अधिकांश पश्चिमी नैतिक प्रणालियाँ, जैसे कि कर्तव्यवाद (Deontology) या परिणामवाद (Consequentialism), एक "बाहर से अंदर" (outside-in) मॉडल पर काम करती हैं। वे एक पृथक, अहंकारी 'स्व' को मानकर चलती हैं और फिर उसके व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए बाहरी नियम (जैसे कांट का निरपेक्ष आदेश) या गणना (उपयोगितावाद) प्रदान करती हैं। इसके विपरीत, अद्वैत वेदांत 'स्व' की अवधारणा को ही रूपांतरित करने का प्रयास करता है। समस्या यह नहीं है कि 'स्व' बुरा व्यवहार कर रहा है, बल्कि यह है कि 'स्व' की पहचान ही गलत तरीके से इस सीमित शरीर-मन के साथ कर ली गई है। श्रवण (शास्त्रों को सुनना), मनन (तर्कपूर्ण चिंतन) और निदिध्यासन (ध्यान) जैसी आध्यात्मिक प्रथाओं के माध्यम से, संकुचित अहंकार-स्व को सार्वभौमिक आत्मन् में विलीन करने का प्रयास किया जाता है। जैसे-जैसे यह आंतरिक परिवर्तन होता है, अनैतिक कार्यों का आधार (स्वार्थ, लोभ, घृणा, जो 'मैं' बनाम 'तुम' की भावना पर निर्भर करते हैं) समाप्त हो जाता है। नैतिक आचरण इस विस्तारित पहचान की स्वाभाविक अभिव्यक्ति बन जाता है। यह दृष्टिकोण केवल व्यक्ति के कार्यों को नियंत्रित करने के बजाय स्वयं कर्ता को रूपांतरित करता है, जो इसे नियम-आधारित प्रणालियों की तुलना में कहीं अधिक मौलिक और स्थायी बनाता है।

नैतिक सापेक्षवाद का खंडन- अद्वैतवादी दृष्टिकोण

अद्वैत वेदांत के वैचारिक उपकरणों से लैस होकर, अब हम नैतिक सापेक्षवाद की सीधी आलोचना कर सकते हैं और यह प्रदर्शित कर सकते हैं कि अद्वैत दर्शन एक अधिक सुसंगत और संतोषजनक दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

खंडित यथार्थ बनाम एकीकृत यथार्थ

यह बहस मूल रूप से दो भिन्न सत्तामूलक दृष्टिकोणों का टकराव है। नैतिक सापेक्षवाद एक ऐसी दुनिया की पूर्व-धारणा पर आधारित है जो मौलिक रूप से बहुलवादी और खंडित है, जिसमें असंगत और पृथक कर्ता और संस्कृतियाँ निवास करती हैं। यदि वास्तविकता स्वयं खंडित है, तो नैतिक सत्य का भी खंडित होना स्वाभाविक है। इसके विपरीत, अद्वैत वेदांत एक एकल, एकीकृत वास्तविकता (ब्रह्म) का प्रतिपादन करता है जो सभी प्रकट विभिन्नताओं का आधार है। यह मौलिक अंतर ही आलोचना का मुख्य बिंदु है। अद्वैत के अनुसार, सापेक्षवादियों की गलती यह है कि वे माया के स्तर (व्यावहारिक सत्य) को ही परम सत्य मान लेते हैं और उसके पीछे की एकता (पारमार्थिक सत्य) को देखने में विफल रहते हैं।

वस्तुनिष्ठ मूल्यों की स्थापना

नैतिक सापेक्षवाद की सबसे बड़ी विफलता यह है कि वह नैतिक मूल्यों के लिए कोई उत्कृष्ट (transcendent) आधार प्रदान नहीं कर पाता। यदि मूल्य केवल सामाजिक सहमति पर आधारित हैं, तो उन्हें किसी भी समय बदला जा सकता है, और वे किसी भी प्रकार की सार्वभौमिक वैधता का दावा नहीं कर सकते। अद्वैत वेदांत इस आधार को सार्वभौमिक आत्मन् में स्थापित करता है। एक नैतिक सत्य इसलिए वस्तुनिष्ठ है क्योंकि यह किसी ईश्वर या संस्कृति द्वारा घोषित नहीं किया गया है, बल्कि इसलिए कि यह वास्तविकता की मौलिक, एकीकृत प्रकृति को दर्शाता है। वे कर्म जो इस एकता की अनुभूति को बढ़ावा देते हैं, वे नैतिक रूप से 'अच्छे' हैं; और वे कर्म जो पृथकता के भ्रम को सुदृढ़ करते हैं, वे 'बुरे' हैं। इस प्रकार, नैतिकता का आधार व्यक्तिपरक राय या सांस्कृतिक पसंद नहीं, बल्कि स्वयं अस्तित्व की संरचना बन जाती है।

सापेक्षवाद का अतिक्रमण

अद्वैत का दो-स्तरीय सत्य का सिद्धांत इसे सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करने की अनुमति देता है, बिना इस जाल में फँसे कि सभी नैतिक प्रणालियाँ समान रूप से मान्य हैं। यह व्यावहारिक स्तर पर सांस्कृतिक भिन्नताओं और विभिन्न धर्मों (आचार-विचारों) को स्वीकार करता है, लेकिन यह पारमार्थिक स्तर पर एक एकीकृत सत्य को भी स्थापित करता है। किसी भी नैतिक प्रणाली का अंतिम मापदंड यह है कि वह व्यक्ति को उस एक आत्मन् की अनुभूति की ओर ले जाने में कितनी सक्षम है। जो प्रणालियाँ घृणा, विभाजन और स्वार्थ को बढ़ावा देती हैं, वे इस मापदंड पर विफल होती हैं, भले ही उन्हें किसी विशेष संस्कृति में स्वीकृति प्राप्त हो। इस प्रकार, अद्वैत हमें एक ऐसा ढाँचा प्रदान करता है जो बहुलवाद को स्वीकार करते हुए भी नैतिक निर्णय के लिए एक सार्वभौमिक कसौटी बनाए रखता है।

नीचे दी गई तालिका नैतिक सापेक्षवाद और अद्वैत वेदांत के बीच के मौलिक अंतरों को स्पष्ट रूप से दर्शाती है-

दार्शनिक सिद्धांत	नैतिक सापेक्षवाद की स्थिति	अद्वैत वेदांत की स्थिति
वास्तविकता की प्रकृति	बहुलवादी और खंडित; कोई एकल, वस्तुनिष्ठ वास्तविकता नहीं।	अद्वैतवादी और एकीकृत; केवल एक परम वास्तविकता (ब्रह्म) है।
नैतिक सत्य का स्रोत	सामाजिक, सांस्कृतिक या व्यक्तिगत सहमति।	वास्तविकता की परम प्रकृति (ब्रह्म/आत्मन् का एकत्व)।
'स्व' की अवधारणा	एक पृथक, स्वायत्त व्यक्ति, जो अपनी संस्कृति से निर्मित होता है।	परम वास्तविकता (ब्रह्म) के साथ अभिन्न एक सार्वभौमिक चेतना (आत्मन्)।
'अन्य' की अवधारणा	मौलिक रूप से भिन्न; एक अलग नैतिक ब्रह्मांड का निवासी।	अंततः 'स्व' से अभिन्न; माया के कारण भिन्न प्रतीत होता है।
जीवन का परम लक्ष्य	अपरिभाषित या व्यक्ति/संस्कृति द्वारा निर्धारित।	अज्ञान (अविद्या) को दूर करना और मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त करना।
नैतिक क्रिया का आधार	सामाजिक मानदंडों का पालन या व्यक्तिगत पसंद।	एकत्व की अनुभूति को बढ़ावा देना और पृथकता के भ्रम को कम करना।

यह तालिका स्पष्ट करती है कि दोनों दर्शनों के बीच का अंतर केवल नैतिक नियमों के बारे में नहीं है, बल्कि वास्तविकता, स्व और जीवन के उद्देश्य की मौलिक समझ के बारे में है। अद्वैत वेदांत एक अधिक व्यापक और एकीकृत विश्वदृष्टि प्रदान करता है जो नैतिकता को ब्रह्मांड की संरचना में ही स्थापित करता है।

२१वीं सदी के लिए अनुप्रयोग- समकालीन दुविधाओं का अद्वैतवादी समाधान

अद्वैत वेदांत केवल एक अमूर्त दार्शनिक प्रणाली नहीं है, बल्कि यह २१वीं सदी की जटिल नैतिक चुनौतियों के लिए व्यावहारिक और गहन समाधान भी प्रस्तुत करता है। इसका महत्व केवल सापेक्षवाद का खंडन करने में नहीं, बल्कि समकालीन दुविधाओं के प्रति एक सकारात्मक और रचनात्मक दृष्टिकोण प्रदान करने में भी है।

पर्यावरणीय नैतिकता

आधुनिक पर्यावरणीय संकट का एक मुख्य कारण मनुष्य और प्रकृति के बीच एक गहरा द्वैत है, जहाँ प्रकृति को एक बाहरी 'संसाधन' के रूप में

देखा जाता है जिसका शोषण किया जा सकता है। नैतिक सापेक्षवाद इस संकट का कोई ठोस समाधान नहीं दे पाता क्योंकि यह पर्यावरणीय कर्तव्यों के लिए कोई सार्वभौमिक आधार प्रदान नहीं कर सकता। अद्वैतवादी दृष्टिकोण से, पर्यावरणीय संकट एक आध्यात्मिक संकट है जो मानवता और प्रकृति के बीच पृथकता के भ्रम से उत्पन्न होता है। यदि संपूर्ण वास्तविकता ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है, तो नदियाँ, पर्वत, जंगल और जीव-जंतु हमसे अलग नहीं हैं, बल्कि वे उसी सार्वभौमिक अस्तित्व के विभिन्न रूप हैं। प्रकृति को नुकसान पहुँचाना एक प्रकार से आत्म-क्षति है। यह समझ एक गहरी पारिस्थितिक चेतना को जन्म देती है, जो शोषण के बजाय सम्मान और सह-अस्तित्व पर आधारित है।

सामाजिक न्याय और समानता

जातिवाद, नस्लवाद, लिंग भेद और अन्य प्रकार के सामाजिक अन्याय इस झूठी धारणा पर आधारित हैं कि मनुष्यों के बीच सतही अंतर (जैसे त्वचा का रंग, जाति, लिंग) मौलिक और महत्वपूर्ण हैं। अद्वैत वेदांत इस धारणा पर कुठाराघात करता है। इसका आग्रह है कि प्रत्येक व्यक्ति में वही एक आत्मन् निवास करता है, जो सभी बाहरी भिन्नताओं से परे है। यह सिद्धांत कट्टरपंथी समानता के लिए सबसे मजबूत संभव तत्वमीमांसीय आधार प्रदान करता है। यह हमें शरीर, जाति या लिंग के सतही भेदों से परे देखकर भीतर की एकीकृत वास्तविकता को पहचानने की माँग करता है। सामाजिक न्याय तब केवल एक राजनीतिक लक्ष्य नहीं रह जाता, बल्कि एक आध्यात्मिक अनिवार्यता बन जाता है - सभी में एक ही आत्मन् को पहचानने का अभ्यास।

अंतर-धार्मिक संवाद

धार्मिक संघर्षों से भरी दुनिया में, नैतिक सापेक्षवाद एक गतिरोध की ओर ले जाता है- "तुम्हारा सच तुम्हारा है, मेरा सच मेरा है," जिससे कोई सार्थक संवाद संभव नहीं होता। अद्वैत वेदांत एक अधिक समावेशी मॉडल प्रस्तुत करता है। अपने दो-स्तरीय सत्य के सिद्धांत के माध्यम से, यह विभिन्न धार्मिक मार्गों को व्यावहारिक स्तर पर वैध मान सकता है, उन्हें एक ही पारमार्थिक वास्तविकता तक पहुँचने के विभिन्न तरीकों के रूप में देख सकता है। यह विविध धर्मों को एक ही परम, अद्वैत वास्तविकता के विभिन्न मार्गों के रूप में देखने के लिए एक तत्वमीमांसीय ढाँचा प्रदान करता है, जो हठधर्मिता पर संवाद को बढ़ावा देता है। यह दृष्टिकोण हमें यह समझने में मदद करता है कि विभिन्न संत और पैगंबर एक ही परम सत्य की बात अलग-अलग भाषाओं और प्रतीकों में कर रहे हैं, जिससे अंतर-धार्मिक सहिष्णुता और समझ का मार्ग प्रशस्त होता है।

अद्वैतवादी ढाँचा केवल आधुनिक समस्याओं के 'उत्तर' ही नहीं देता; यह 'प्रश्नों' को ही पुन- परिभाषित करता है। यह ध्यान को प्रतिस्पर्धी अधिकारों (जैसे, मानव बनाम प्रकृति, मेरा समूह बनाम तुम्हारा समूह) के मध्यस्थता से हटाकर उस पृथकता की भावना को भंग करने पर केंद्रित करता है जो इन संघर्षों को पहली जगह में पैदा करती है। उदाहरण के लिए, आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संघर्ष को हल करने का पारंपरिक तरीका एक 'संतुलन' या 'समझौता' खोजना है। अद्वैतवादी दृष्टिकोण यह पूछेगा- "वह कौन सी मौलिक धारणा है जो इस संघर्ष को पैदा कर रही है?" उत्तर है- यह धारणा कि 'मानवता' और 'प्रकृति' दो अलग-अलग और विरोधी संस्थाएँ हैं। अद्वैत इस द्वैत को भंग करके प्रश्न को ही बदल देता है। प्रश्न अब यह नहीं है कि "हम अपनी जरूरतों को प्रकृति के विरुद्ध कैसे संतुलित करें?" बल्कि यह है कि "हम इस तरह से कैसे कार्य कर सकते हैं जो संपूर्ण अस्तित्व के साथ हमारी सच्ची, एकीकृत पहचान को दर्शाता हो?" यह संघर्ष-प्रबंधन मॉडल से पहचान और एकीकरण के तर्क की ओर एक आदर्श बदलाव है, जो अधिक गहन और स्थायी समाधान प्रदान करता है।

आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य और अद्वैतवादी प्रत्युत्तर

किसी भी दार्शनिक प्रणाली की मजबूती का परीक्षण उसकी आलोचनाओं का सामना करने की क्षमता में होता है। अद्वैत वेदांत, अपनी गहनता के बावजूद, कई आलोचनाओं का विषय रहा है। इस खंड में, हम कुछ प्रमुख आलोचनाओं और अद्वैतवादी दृष्टिकोण से उनके संभावित उत्तरों पर विचार करेंगे।

निष्क्रियता और जगत-त्याग का आरोप

अद्वैत पर सबसे आम आरोपों में से एक यह है कि जगत को 'मिथ्या' कहकर, यह सामाजिक निष्क्रियता, पलायनवाद और संसार के प्रति उदासीनता को प्रोत्साहित करता है। आलोचकों का तर्क है कि यदि यह दुनिया एक भ्रम है, तो इसमें सुधार करने या नैतिक रूप से कार्य करने का क्या औचित्य है?

अद्वैतवादी प्रत्युत्तर- यह आलोचना अद्वैत के दो-स्तरीय सत्य के सिद्धांत को समझने में विफलता से उत्पन्न होती है। शंकराचार्य ने जगत को 'असत्' (अस्तित्वहीन) नहीं, बल्कि 'मिथ्या' कहा, जिसका अर्थ है कि इसका एक सापेक्ष, व्यावहारिक अस्तित्व है। स्वयं शंकराचार्य एक अथक सुधारक, यात्री और संगठनकर्ता थे, जिन्होंने पूरे भारत में मठों की स्थापना की। उनका जीवन निष्क्रियता का नहीं, बल्कि गहन कर्मठता का उदाहरण है। अद्वैतवादी दृष्टिकोण में, संसार में कर्म का त्याग नहीं किया जाता, बल्कि उसे कर्म योग के रूप में पुनः संदर्भित किया जाता है - अर्थात्, फल की आसक्ति के बिना, कर्तव्य की भावना से किया गया निस्वार्थ कर्म। इस प्रकार का कर्म मन को शुद्ध करता है और व्यक्ति को परम सत्य की अनुभूति के लिए तैयार करता है। अतः, नैतिक और सामाजिक कर्म न केवल अनुमत हैं, बल्कि आध्यात्मिक प्रगति के लिए आवश्यक भी हैं।

अमूर्तता का आरोप

एक और आलोचना यह है कि "यह अनुभव करना कि मैं ब्रह्म हूँ" का विचार औसत व्यक्ति के लिए रोजमर्रा के नैतिक निर्णय लेने के लिए बहुत अमूर्त, रहस्यमय और अव्यावहारिक है। यह एक उच्च दार्शनिक

आदर्श हो सकता है, लेकिन यह एक सामान्य व्यक्ति को नैतिक दुविधा में कैसे मार्गदर्शन कर सकता है?

अद्वैतवादी प्रत्युत्तर- यह सच है कि आत्म-साक्षात्कार एक उच्च लक्ष्य है, लेकिन एकता का सिद्धांत पूर्ण अनुभूति से पहले भी एक शक्तिशाली नियामक आदर्श के रूप में कार्य कर सकता है। यह बौद्धिक समझ भी कि सभी में एक ही आत्मन् निवास करता है, अधिक सहानुभूति, करुणा और नैतिक संयम को प्रेरित कर सकती है। उपनिषदों के महावाक्य, जैसे 'तत् त्वम् असि', पूरी तरह से साकार होने से पहले भी नैतिक दिशा-सूचक के रूप में कार्य कर सकते हैं। जब हम किसी दूसरे व्यक्ति के साथ व्यवहार करते हैं, तो यह याद रखना कि वह व्यक्ति मौलिक रूप से मुझसे अलग नहीं है, हमारे कार्यों को बदल सकता है। यह सिद्धांत नैतिकता के लिए एक "आकांक्षात्मक" ढाँचा प्रदान करता है, जो हमें लगातार अपने संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठने के लिए प्रेरित करता है।

नैतिक भेदों की समस्या

यदि सब कुछ एक है, तो हम अच्छे और बुरे, न्याय और अन्याय के बीच आवश्यक भेद कैसे कर सकते हैं? क्या अद्वैतवाद सभी भेदों को मिटाकर एक प्रकार के नैतिक अस्पष्टतावाद को जन्म नहीं देता?

अद्वैतवादी प्रत्युत्तर- इस समस्या का समाधान भी व्यावहारिक सत्य (Vyā vahā rika Satya) के ढांचे में निहित है। जब तक हम इस लेन-देन की दुनिया में काम कर रहे हैं, तब तक नैतिक भेद, जैसे धर्म और अधर्म, न केवल संभव हैं, बल्कि आवश्यक भी हैं। अद्वैत यह नहीं कहता कि एक परोपकारी कार्य और एक क्रूर कार्य एक समान हैं। व्यावहारिक स्तर पर, उनके परिणाम और नैतिक मूल्य पूरी तरह से अलग हैं। परम अद्वैतता अनुभवजन्य भेदों को मिटाती नहीं है; यह उन्हें एक ऐसे संदर्भ में रखती है जिसमें उनकी सापेक्ष और अनंतिम प्रकृति को समझा जा सकता है। यह हमें यह समझने में मदद करता है कि ये भेद परम नहीं हैं, लेकिन वे मानवीय अनुभव के स्तर पर वास्तविक और महत्वपूर्ण हैं।

निष्कर्ष- वैश्विक नैतिकता के लिए एक एकीकृत दृष्टि का पुनरुद्धार

यह शोध पत्र नैतिक सापेक्षवाद द्वारा प्रस्तुत चुनौती के विश्लेषण से शुरू हुआ, जिसने २१वीं सदी में एक साझा नैतिक आधार की नींव को खोखला कर दिया है। हमने तर्क दिया कि इस संकट की जड़ें एक खंडित, द्वैतवादी विश्वदृष्टि में हैं जो 'स्व' और 'अन्य' के बीच एक दुर्गम खाई पैदा करती है। इस विखंडन के प्रतिकार के रूप में, हमने आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत दर्शन को प्रस्तुत किया।

अद्वैत का दर्शन अपनी अद्वैत तत्वमीमांसा के माध्यम से एक सुसंगत और स्थिर नैतिक आधार प्रदान करता है। 'ब्रह्म' की परम एकता और 'आत्मन्' के साथ इसकी अभिन्नता का सिद्धांत नैतिकता को व्यक्तिपरक राय या सांस्कृतिक सहमति के अस्थिर धरातल से उठाकर स्वयं अस्तित्व की संरचना में स्थापित करता है। इसने एक सार्वभौमिक नैतिकता की नींव रखी है जो प्रेम, करुणा और अहिंसा जैसे मूल्यों को सत्तामूलक एकता के तार्किक परिणाम के रूप में देखती है।

शंकराचार्य की प्रतिभा उनके पारमार्थिक और व्यावहारिक सत्य के द्वैत-स्तरीय सिद्धांत में निहित है। यह परिष्कृत ढाँचा निरपेक्ष और सापेक्ष, सार्वभौमिक और विशेष के बीच के तनाव को सफलतापूर्वक हल करता है। यह हमें एक परम, एकीकृत सत्य की ओर निर्देशित करते हुए भी सांसारिक यथार्थ, सांस्कृतिक विविधता और नैतिक कर्तव्यों की वैधता को स्वीकार करने की अनुमति देता है। यह एक ऐसी दृष्टि प्रदान करता है जो एक अखंड सांस्कृतिक एकरूपता थोपे बिना सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों को स्थापित कर सकती है।

अंततः, शंकराचार्य की दृष्टि का पुनरुद्धार केवल एक अकादमिक अभ्यास नहीं है। एक ऐसे युग में जो अभूतपूर्व वैश्विक अंतर्संबंध के साथ-साथ गहरे वैचारिक विभाजन, पर्यावरणीय संकट और सामाजिक अन्याय से चिह्नित है, हमारे साझा, एकीकृत अस्तित्व को पहचानने का आह्वान कोई पुरातन रहस्यवादी विचार नहीं है, बल्कि मानव अस्तित्व और उत्कर्ष के लिए एक महत्वपूर्ण और तत्काल नुस्खा है। यह हमें द्वैत के भ्रम से एकता के सत्य की ओर, विखंडन से एकीकरण की ओर, और सापेक्षवाद के शून्य से एक सार्वभौमिक और अर्थपूर्ण नैतिकता की ओर ले जाने का मार्ग दिखाता है।

Reference –

1. Deutsch, E. (1969). *Advaita Vedānta- A Philosophical Reconstruction*. East-West Center Press.
2. Gambhirananda, S. (Trans.). (1965). *Brahma-Sūtra-Bhāṣya of Śrī Śaṅkarācārya*. Advaita Ashrama.
3. Madhavananda, S. (Trans.). (1921). *The Brihadaranyaka Upanishad with the Commentary of Shankaracharya*. Advaita Ashrama.
4. Potter, K. H. (Ed.). (1981). *Encyclopedia of Indian Philosophies- Advaita Vedānta up to Śaṃkara and His Pupils*. Princeton University Press.
5. Sharma, C. (1960). *A Critical Survey of Indian Philosophy*. Rider & Company.
6. Gowans, C. (2021). "Moral Relativism". In E. N. Zalta (Ed.), *The Stanford Encyclopedia of Philosophy* (Winter 2021 Edition).
7. MacIntyre, A. (1981). *After Virtue- A Study in Moral Theory*. University of Notre Dame Press.
8. Chapple, C. K. (1998). "Toward an Indigenous Indian Environmentalism". In L. E. Sponsel & P. U. Cameron (Eds.), *To Sacred Ground- Plain-Spoken Perspectives on the Medicine Wheel, Bear Butte, and the Sacred Land of the Lakota and Cheyenne*.
9. Clooney, F. X. (1993). *Theology After Vedānta- An Experiment in Comparative Theology*. State University of New York Press.
10. Rambachan, A. (1994). *The Limits of Scripture- Vivekananda's Reinterpretation of the Vedas*. University of Hawaii Press.